

काशी मरणान्मुक्ति नश्वर देह का अमृत शैव- दर्शन

किसी पर्वतीय उद्दाम धारा के सामान प्रवहमान भाषा के वेग में संसार की सम्पूर्ण म्लानता को समेटकर संरचना का यदि कोई 'महा'-सागर बने तो वह कृति 'काशी मरणान्मुक्ति' होगी, यह पूर्वानुमान इसकी विधा विशेष (उपन्यास) से लगाना कठिन ही है। मेरे साथ यही हुआ जब मुझे उपन्यास के रूप में इस कृति का नाम बताया गया। किन्तु पुस्तक की भूमिका मात्र को पढ़कर पुस्तक को आद्योपांत पढ़ने का उत्पन्न आवेग बराबर बना रहेगा, यह अनुमान मुझे हो गया और वह प्रायः ठीक था। अध्यात्म के विषयों पर साहित्यिक लेखन अपने आप में एक चुनौती है, विशेषकर यह तब और भी जब लेखक की निष्ठा इन दो भिन्न धाराओं के प्रति समान प्रतिबद्धता की हो। इस तरह मैं इस पुस्तक में वह आश्वासन भी देख रहा हूँ जो इस दिशा में गतिशील रचनाकारों को संभावित स्वलन से अविचलित रह पाने का शक्ति देता है।

कोई यदि यह प्रश्न करे कि क्या रचनात्मक लेखन की परिकल्पना इस कृति की संरचना में परिपूर्ण होती है तो मैं लेखकद्वय की भूमिका का यह अंश उद्धृत करूँगा-

'सत्य की शाख पर उगा 'महा' रूपी कल्पना का यह पुष्प कब स्वयं सत्य हो उतर आया, यह हमें भी ज्ञात नहीं हुआ।'

अर्थात् यह साहित्य अथवा साधना का कोई अनुष्ठान मात्र न होकर इनकी सिद्धि का पर्याय है ! वधाई !

तुलसी ने मानस में किष्किन्धाकाण्ड का आरंभ करते हुए लिखा-

मुक्ति जन्म माहि जान ज्ञान खानि अघ हानि कर

जहं बस संभु भवानि सो काशी सेइय न कस ।

शायद यह इस कृति का आदि बीज है। इस शास्त्र सिद्ध महाप्रयोग के प्रतिपादन के लिए लेखक को किसी महानायक की आवश्यकता नहीं थी, यह स्वयं सिद्ध है। उपन्यास का संक्षिप्त सा कथानक यह है कि एक स्वपच 'महा' अपने सत्याचरण से इसमें जैसे 'हरिश्चंद्र' ही हो जाता है। यह पुराणों की उस कथा जिसमें हरिश्चंद्र को स्वपच होने का श्राप झेलना पड़ता है का विपर्यय प्रतीत हो सकता है किन्तु है यह उसका वस्तुतः विस्तार ही।

किन्तु यह मुक्ति क्या है? जब महामृत्युन्जय मंत्र केन्द्राष्टा ऋषि वशिष्ठ ऋग्वेद मंडल 7 के

सूक्त 59 के मन्त्र 12 में त्रिनेत्रधारी (शिव!) से कहते हैं - मृत्योर्मुक्तीय मामृतात् - तो वह देह त्याग के बाद का स्वर्ग का वास है या कुछ और है? क्या यह मुक्ति देह में अवस्थित होते हुए भी संभव है? और क्या यह जीवन और मृत्यु की उस श्रृंखला से ही मुक्ति नहीं है जो चाहे जन्म हो या मृत्यु, मात्र बंधन ही तो है! क्या ऐसा अमृत सातत्य देहधारी को भी सुलभ है ?

इस प्रश्न का उत्तर पुस्तक की भूमिका में देने की चेष्टा इस प्रकार की गयी है-

'स्वयं की काया में स्थित हो साधना करता मानव जब स्वयं के सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा से परिचित होता है, तो उसी घड़ी देह भान से वह मुक्त हो जाता है। यही मरण भी है एवं काशी मरणान्मुक्ति भी'

क्या यह साधना महा को 'चिताभास्मालेप से त्रिपुंड लगाने और 'दिकपट' धारण करने से ही सिद्ध हो रही है अथवा अनाम गुरु का यह आस कथन 'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं' गुरु की अहैतुकी कृपा का परिणाम है? और प्रश्न यह भी की शिव सायुज्यता की एक चिरंतन प्रतीति का विकल्प आखिर कौनसी साधना हो सकती है?

अग्नि की चिता में 'भस्मांत' नश्वर देह को महा ईशावाशयोपनिषद् के 18 वें मन्त्र के अनुसार क्या अग्नि से की गयी इस प्रार्थना को फलित देख रहा है- अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् ! अथवा 20वीं सदी के रहस्यवादी अंग्रेजी कवि येट्स की 'बाईजेंशियम' कविता श्रृंखला की इन पंक्तियों से अभिभूत है -

O sages standing in God's holy fire

As in the gold mosaic of a wall...

(दीवाल पर स्वर्णिम मोजेक से / प्रभु की पवित्र अग्नि में खड़े

ओ ऋषियों! बाहर आओ /एक गोल घेरे में/ मेरी आत्मा के स्वामी गीत गाओ

पशुता से बंधे/ इच्छाओं के दास / अपने आप से बैखबर

इस हृदय को गलाओ/ ले लो मुझे भी अपने साथ

और इसे चिरंतन बनाओ)

-कहना कठिन है. किन्तु जिस चमत्कारी रीति से पुस्तक के 69 अध्यायों के आरम्भ में 'महाश्मशान मणिकर्णिका पर सहस्राधिक नामावलियों और सामासिक विशेषणों से आविर्भूत भगवान शिव का महानिनाद उद्घोषणा करता है, अनुभूति और अभिव्यक्ति के कुछ ऐसे पैमाने जरूर प्रदान करता है जिनसे इस आकलन की मनोज्ञता पर गुरुतर विचार की आवश्यकता उत्पन्न होती है।

यह विस्मय ही उठरता है कि एक ही देवता, एक ही साधक और एक ही गुरु पर केंद्रीकृत इस कथानक को इतने विराट आकार में बाँध रखने की क्षमता जितनी शिल्प कुशलता की प्रत्यापेक्षा प्रधान रही होगी, उसका केवल अनुमान ही किया जा सकता है। विशेषकर तब भी जब प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में काशीश्वर के नित नूतन उद्घोष की आवश्यकता प्रतिपादित हो और अन्तिम

आप्त वाक्य ' पर याद रख, मैं तेरा गुरु नहीं' (पूर्वाग्रह की सीमा तक) दुहराया जाना भी आवश्यक हो!

हिंदी में हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'बाण भट्ट की आत्मकथा' या 'चारुचंद्र लेख' के मध्य युग को 'पुनर्नवा' करता यह उपन्यास उन अनेक 'योगी' आत्मकथाओं को रूपाकार देता है जिन्हें कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण और कुछ लोग गल्प कहना पसंद करते हैं। लौकिक सन्देश की दृष्टि से जहां यह शैव दर्शन का प्रामाणिक निदर्शन है, वहीं तुलसी के शैव-वैष्णव समन्वयवाद और वर्तमान युग के साई बाबा के द्वारा विस्तारित कबीर पंथ की आस्था भित्ति को नयी दृढता प्रदान करता है।

शिव भारतीय मनीषा का विश्व चेतना को प्रदत्त परमोपहार हैं। वे जितने थे और हैं उससे कहीं अधिक भविष्य की सर्वोच्च सत्ता हैं। शिव सृष्टि की नियति, मानव की समिष्टि और स्रष्टा के प्रकटीकरण की प्रक्रिया हैं। इस सार तत्व को सर्जनात्मक मेधा से प्रकट करने वाले लेखक द्वय मनोज ठक्कर और रश्मि छजेड को मेरी कोटिश: बधाई।

अध्यक्ष महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थान
35, इडेन गार्डन, चूनाभट्टी, कोलार रोड भोपाल-462016

विन्नम अनुरोध

'अक्षरा' के सुधी पाठकों एवं रचनाकारों से विन्नम अनुरोध है कि अपना पूरा पता स्पष्ट शब्दों तथा पिनकोड नम्बर के साथ कार्यालय को अवश्य प्रेषित करें।

स्पष्ट पते के अभाव में 'अक्षरा' समय पर आपको उपलब्ध नहीं हो पाती है।

सम्पादक